पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री समयसार, गाथा १३, ता. ६-४-१९८९
भिंड, प्रवचन नंबर P०९

ये श्री समयसारजी परमागम शास्त्र है, जो अपना शुद्धात्मा को बतानेवाला शास्त्र है। ये निमित्तरूप है और ये आत्मा है, उपादानरूप है। तो जिनेंद्र भगवान की वाणी अपने शुद्धात्मा के स्वरूप को बतानेवाली है। तो इसकी १३ नंबर की ये गाथा का विवेचन चलता है कि, आत्मा को आजतक आत्मदर्शन यानि आत्मा की अनुभूति नहीं हुई है। ये कैसे आत्मदर्शन हो जाये, अज्ञान का नाश कैसे हो, इसका एक प्रकरण १३ नम्बर की गाथा में है। उसका पहला पैराग्राफ पूरा हो गया है। अभी दूसरा पैराग्राफ चलेगा। **बाह्य (स्थूल) दृष्टिसे देखा जाए तो**, यानि अज्ञान से देखा जाए तो, सम्यग्ज्ञान से न देखा जाए और अज्ञान से देखा जाए तो, तो, अज्ञान से देखा जाए तो, क्या दिखता है, वो पहले बताते हैं।

बाह्य स्थूल दृष्टिसे देखा जाये तो:- जीव-पुद्गल की अनादि बंधपर्यायके समीप जाकर, जीव और पुद्गल, दोनों स्वभाव से भिन्न-भिन्न होने पर भी, जिसको चेतन और जड़ के विभाग की दृष्टि नहीं है और दो के बीच में अत्यंत अभाव होने पर भी, अत्यंत भिन्नता होने पर भी, अत्यंत अभिन्न लगता है, ऐसी अज्ञान की द्रष्टि से देखा जाए तो, **अनादि बंधपर्यायके समीप,** यानि भावबन्ध के समीप **जाकर** देखें तो.... या तो, जो भावेन्द्रिय है, इसके समीप जाकर देखे तो, **एकरूपसे अनुभव करनेपर**, जो भगवान आत्मा और पुद्गल भिन्न-भिन्न होने पर भी, उसको अपने आप द्रष्टि के दोष से भेदज्ञान का अभाव होने पर....अज्ञानभाव से देखें तो, देह और आत्मा एक लगता है और आत्मा और शुभाशुभभाव एक लगते हैं। **एकरूपसे अनुभव करनेपर यह नवतत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं।** आहाहा!

गाथा है, क्या? कि भूतार्थनय से तू नौ तत्त्व को जान। आज तक अज्ञानी ने क्या किया? क्या कहा? कि अभूतार्थनय से नौ तत्त्व को जाना कि जीव पुद्गल का कर्ता है और पुद्गल से जीव का परिणाम होता है। अरे! कभी कर्ता-कर्म संबंध न हो तो कुछ नहीं, निमित्त-नैमित्तिक संबंध तो है ना। आहाहा! तो ये नौ तत्त्व अभूतार्थनय से अनंतकाल से जाना, यानि नौ तत्त्व से भिन्न आत्मा है, ऐसा नहीं जाना। नौ तत्त्व और भगवान आत्मा ये स्वभाव से ही भिन्न-भिन्न हैं। एकत्व हुआ नहीं था भूतकाल में, अभी भी एकत्व हुआ नहीं है और भावीकाल में भी एकत्व होनेवाला नहीं है, विभक्त है। तो भी अपनी दृष्टि के दोष से, ये रागादि भाव और मैं एक हूँ, ऐसी उसकी दृष्टी हो गई है। तो ऐसे देखो तो ये नौ तत्त्व भूतार्थ हैं और सत्यार्थ हैं। यानि अज्ञान सत्यार्थ है। क्या कहा? ऐसी अज्ञान में भ्रांति हो गई, तो ऐसे अज्ञान सत्यार्थ है। आहाहा! कि मैं राग का करनेवाला हूँ और दुःख का भोगनेवाला मैं हूँ। बाह्य स्थूल द्रष्टि से वो देखते हैं, तो उस अपेक्षा से, आहाहा! वो ठीक है मगर, यानि उसमें अज्ञान सिद्ध हो गया। क्या? अज्ञान ठीक है, ऐसा नहीं। ये अज्ञान हुआ इस द्रष्टि से तो, अज्ञान की भी अस्ति है। क्या कहा? अज्ञान की जो अस्ति न हो तो, अज्ञान टालने का उपदेश भी व्यर्थ हो। आहाहा! अनादि का अज्ञान क्यों है? कि

जड़-चेतन भिन्न-भिन्न होने पर भी, राग और चैतन्य परमात्मा भिन्न-भिन्न होने पर भी, उसको एक लगता है। वो बंध के समीप जाकर देखता है, तो एक लगता है। इन्द्रियज्ञान की द्रष्टि से देखें, तो एक लगता है। राग की द्दष्टी से देखें तो, एक लगता है, उसको। ऐसा अज्ञान भी है, ऐसा अज्ञान भी है। पर्याय में अज्ञान नहीं है, ऐसा नहीं है।

स्वभाव से आत्मा, ज्ञायक, ज्ञाता होने पर भी, जो ज्ञाता-द्दष्टा को भूल जाता है और देहादि-रागादि को मेरा मानता है, तो अज्ञान प्रगट होता है। ऐसी उपलक द्दष्टि से देखो तो, ऊपर-ऊपर, ऊपरी द्दष्टि से देखो तो, ये नौ तत्त्व भूतार्थ दिखते हैं और ये प्रमाण का विषय कहा।

प्रमाणज्ञान के विषय में आगम प्रमाण और अध्यात्म प्रमाण (है)। प्रमाणज्ञान में सब समाता है। शुद्ध पर्याय भी आती है और अशुद्ध पर्याय भी आती है। मगर प्रमाणज्ञान से बाहर जाना नहीं और प्रमाण में अटकना नहीं। तो सारा सामान्य जगत तो प्रमाण से बाहर चला गया, प्रमाण में, वर्तुल में भी आया नहीं। और थोड़े जीव, अल्प जीव, पर के साथ मेरा कुछ संबंध नहीं है, मेरा द्रव्य-गुण-पर्याय की वर्तुल में मेरा सब कार्य-क्षेत्र पूरा होता है। तो प्रमाण में आ गया। मगर प्रमाण में से जो निश्चयनय निकालता नहीं है, वो अज्ञानी रह जाता है। प्रमाण का पक्ष है। प्रमाणाभास है, प्रमाण नहीं है। सविकल्प-प्रमाण, सम्यक्-प्रमाण नहीं है। प्रमाण से मात्र पदार्थ की सिद्धि होती है, मगर प्रयोजन की सिद्धि होती नहीं है। हाँ! प्रमाण में से जब प्रयोजन की सिद्धि होती है, अनेकांत में से सम्यक्एकांत निकालता है, तो सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान ज़रूर होता है। तब सच्चा प्रमाण होता है। वो पदार्थ की सिद्धि सम्यग्ज्ञान में होती है। मिथ्याज्ञान में पदार्थ की सिद्धि नहीं है और प्रयोजन की सिद्धि भी नहीं है। हें? ज्ञान ही नहीं। प्रमाणज्ञान तो सम्यग्ज्ञान है। आहाहा! सविकल्प-प्रमाण भी सच्चा प्रमाण नहीं है। वो सम्यक्-प्रमाण निर्विकल्पध्यान में प्रमाणज्ञान का जन्म होता है और प्रमाणज्ञान का जन्म भी सम्यक्एकांतपूर्वक होता है।

प्रमाणज्ञान का विषय शुद्धनय नहीं है। शुद्धनय का विषय प्रमाणज्ञान नहीं है। शुद्धनय का विषय तो अकेला शुद्धात्मा है। उसमें द्दष्टि देने से सम्यग्ज्ञान प्रगट होता है और मैं ज्ञायक हूँ, ऐसे सम्यक्एकांतपूर्वक अतीन्द्रिय आनंद की पर्याय का जन्म होता है, तो सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत का ज्ञान होता है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत् का पदार्थ का ज्ञान, अनुभव में होता है। स्याद्वाद का जन्म, अनेकांत का जन्म, अनुभूति के काल में होता है। शास्त्र के लक्ष्य से स्याद्वाद का जन्म होता नहीं है। शास्त्र तो हमने बहुत पढ़ा। हम हमारी बात करते हैं, कोई पर की बात इधर मना है। प्रमुख साहब ने लिखा है (यहाँ) बोर्ड कि, "विकथा की मनाई है।" हम अपनी बात करते हैं।

अनंत-अनंतकाल बीते, हम द्रव्यलिंगी मुनि भी हुए और नौवें ग्रैवेयक तक दुःख भोगने के लिये (भी) गए। क्या कहा? स्वर्ग में गए मगर दुःख भोगने के लिए। आहाहा! अनेकांत और स्याद्वाद के नाम से, स्याद्वाद अनेकांत और प्रमाणज्ञान का विषय है। नय का विषय कोई अलग, अपूर्व है। है तो उसमें ही। है तो अनेकांत में ही, सम्यक्एकांत छुपी हुई है। अनेकांत को छोड़ो तो सम्यक्एकांत नहीं निकलेगा और अनेकांत के पक्ष में पड़ो तो भी सम्यक्एकांत (नहीं निकलेगा)। आहाहा!

स्वर्ण रहता है ना, वो स्वर्ण पाषाण में रहता है। अन्ध पाषाण में स्वर्ण रहता नहीं है। ऐसे जो नौ

तत्त्व हैं, वो (स्वर्ण) पाषाण की जगह पर हैं। शांति से ज़रा सुनना। आहाहा! है तो ये नौ तत्त्व में छुपी हुई आत्म-ज्योति। स्वर्ण पाषाण, स्वर्ण पाषाण में स्वर्ण रहता है। अन्ध पाषाण में स्वर्ण रहता नहीं है। तो ये जो नौ तत्त्व है, वो स्वर्ण पाषाण है, अन्ध पाषाण नहीं है। उसमें अपनी ज्ञायक-ज्योति विराजमान है, निकालना चाहिये। जगत के पदार्थ, जीव, तो बाह्य में घूमते हैं, प्रमाण से बाहर। और विद्वान लोग प्रमाण में अटक जाते हैं। हम भी अटक गए थे, पूर्व में। मेरी बात करता हूँ मैं, आपकी बात (नहीं करता)। आहाहा!

मगर जब प्रमाण में आया, तो भी आत्मा की अनुभूति नहीं हुई। तो कोई और बात रह गई है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत् तक आया, गुणपर्यायवद्द्रव्यम् में तो आया, तत्वार्थ सूत्र में पाँच-भाव जीव भाव हैं, वहाँ तक भी आया। मगर उसमें, आहाहा! आत्मा की अनुभूति होती नहीं है। ये ज्ञेय है, सब उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत् ये ज्ञेय है, ध्येय नहीं है। हाँ! वो ज्ञेय में ध्येय है, ज्ञेय में ध्येय है, छुपा है। इसके लिए एक दृष्टान्त देता हूँ, सादा दृष्टान्त - मैं सबको पूछता हूँ मगर जवाब नहीं माँगता। पूछता तो हूँ मगर जवाब नहीं माँगता हूँ कि जैसे मौसंबी है मौसंबी, तो मैं पूछता हूँ प्रश्न कि मौसंबी है, सो हेय है कि उपादेय है? किसी को बोलना नहीं, बोलना (नहीं)। जबाव नहीं देना। समझे? विचार करना कि ये क्या प्रश्न आया? दो में से एक तो हो ना। या तो उपादेय हो या हेय हो। दो में (से) एक होना चाहिए। दोनों में से एक भी नहीं है, वो तो ज्ञेय है। अच्छा! जो हेय कहो, तो रस चला जाएगा और उपादेय कहो तो, सब आ जाएगा, छिलका, पेट में और डॉक्टर के पास जाना पड़ेगा। समझे? तो ये जो मौसंबी है, ज्ञेय है। ऐसे प्रमाण का विषयभूत पदार्थ जो है, वो ज्ञेय है। उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत् परिणाम से सहित जो आत्मद्रव्य है, वो ज्ञेय है और परिणाम से रहित आत्मा है, वो उपादेय, ध्येय है।

तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि अनादिकाल से बंध के वश, शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिण्ड, उसको आत्मद्रव्य कहा है, मगर जीवतत्त्व कहा नहीं है। जीवद्रव्य में जीवतत्त्व छुपा है। छहद्रव्य हैं, वो परिणाम सहित का द्रव्य है। पर्याय सापेक्ष द्रव्य है। आहाहा! मगर जो जीवतत्त्व , पर्याय सहित होने पर भी पर्याय से रहित आज तक देखा (नहीं)। आज तक देखा नहीं। और पर्याय से सहित हो आत्मा (अगर), ऐसा ही हो और अंतर्दृष्टि करे, तो द्रव्य उपादेय नहीं लगे क्योंकि पर्याय से सहित द्रव्य माना है, तो पर्याय भी उपादेय, मिथ्यात्व की पर्याय भी उपादेय आ जायेगी। मगर ये नौ तत्त्व परिणाम अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती है। क्या कहा? फिर से।

समयसार की १४वीं गाथा में एक प्रश्न आया कि प्रभु! आप कहते हैं कि आत्मा का अनुभव करो। पर हम अनुभव कैसे कर सकें? हमारे साथ आठ प्रकार का कर्म का संबंध है, अभी हमारी मनुष्य पर्याय है और ज्ञान-दर्शन गुण भी दिखता है, भेद और हीनाधिक अवस्था भी है मौजूद, पर्याय और राग भी मौजूद है, ऐसे पाँच-भाव के सद्भाव में, यानि पर्याय के सद्भाव में... पर्याय से रहित.... पर्याय के सहित है, तो आप कहते हैं कि अनुभूति हो सकती है। तो कैसे अनुभूति हो सकती है? सुन! देख! कि ये सब अभूतार्थ होने से अनुभूति हो सकती है।

जब तेरा ज्ञान अन्तर्मुख होगा तब पाँच-भाव बाहर रह जायेगा। अनुभव का विषय बननेवाला नहीं है। अनुभव का विषय तो एक शुद्धात्मा ही बनेगा। पाँच-भाव होने पर भी अनुभूति हो सकती है।

अभूतार्थ यानि स्वभाव में उसका अभाव है। उसको अलोक में भेजने की बात नहीं है। पर्याय को अलोक में मत भेज। पर्याय का अस्तित्व पर्याय में रख, मगर पर्याय मेरे में नहीं है (ऐसा मान)। मेरी पर्याय से मैं रहित हूँ। यह रहित-सहित की रमत है। रहित-सहित की रमत है। आहाहा! जिसको रहित का श्रद्धान-ज्ञान होता है, वो ही (उस ही) समय, काल-भेद नहीं है, उसको पर्याय से मैं सहित हूँ, ऐसे ज्ञेय का ज्ञान हो जाता है। ध्येय का ध्यान और ज्ञेय का ज्ञान। ध्येय तो पर्याय से रहित है और ज्ञेय तो पर्याय से सहित है। समय एक है। समय एक है, तो कोई बाधा आती नहीं है। आहाहा!

जैसे केवली भगवान एक समय में उत्पाद-व्यय-ध्रुव को जानते हैं। ऐसे श्रुतज्ञानी, एक समय में, उत्पाद-व्यय-ध्रुव को जानता है। कि तीन को क्यों जाने? कि तीन नहीं है, एक है। तीन कहाँ है? आहाहा! ज्ञेय एक है। आहाहा! ज्ञेय एक है और जो ज्ञेय है, उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत्, वो ध्येय नहीं है। आहाहा! ध्येय तो ध्रुव है। ध्येय तो ध्रुव है और ध्यान करनेवाला उत्पाद-व्यय पर्याय है, और जब ध्येय और ध्यान की एकता होती है, तो ध्याता हो जाता है। ध्याता का नाम स्वज्ञेय है, ध्याता का नाम स्वज्ञेय है। ऐसे उपलक (ऊपर-ऊपर) द्रष्टि से देखो तो, यानि पर से भिन्न प्रमाण में आकर देखो तो, ये सब नौ तत्त्व भूतार्थ हैं, सत्यार्थ हैं। मगर उसमें साध्य की सिद्धि होती नहीं है। आहाहा!

अभी साध्य की सिद्धि अनंतकाल से नहीं की, प्रमाण में अटका। विद्वान लोग प्रमाण में अटक गए। आहाहा! प्रमाण में से....कार्तिकेय-अनुप्रेक्षा नाम का शास्त्र है, भावलिंगी संत का लिखा हुआ। उसमें फ़रमाते हैं कि प्रमाण में से जो कोई निश्चयनय निकालता है, वो जिनवचन में कुशल है, जिनवचन में कुशल है। प्रमाण में से, मौसंबी में से कोई रस निकाले, तो कुशल है। मौसंबी में से (कोई रस) निकालना नहीं जाने, ऐसा-ऐसा करे (छिलका सहित मौसंबी खावे) तो? बुद्धू है। क्या कहा? पशु है। ऐसा-ऐसा खाता है। क्या खाता है? उसमें से रस निकाल ले, तो छिलका बाहर।

ऐसे प्रमाणज्ञान के विषय में शुद्धाशुद्ध पर्याय का पिंड, वो द्रव्य है, जीवद्रव्य है। जीवतत्त्व नहीं है। आहाहा! तो इसमें से प्रमाण में से जो निश्चयनय निकालता है, वो जिनवचन में कुशल है और अनुभूति के काल में उसको पदार्थ की सही सिद्धि होती है। पदार्थ का खंडन नहीं होता है। सिद्धांत का खंडन नहीं होता है। सिद्धांत अनुभूति के काल में सिद्ध होता है। आहाहा! खंडन तो मिथ्यात्व का होता है। पदार्थ का खंडन होता नहीं है। कौन खंडन करे उत्पादव्ययध्रुवयुक्तंसत् का? खंडन करनेवाला कोई (है ही नहीं)। हाँ! मिथ्यात्व का खंडन करने की बात इधर चलती है। वो तो करना ही चाहिए। इसके लिए तो शिविर है। शिविर का प्रयोजन क्या है? आहाहा! आत्मा का अनुभव हो जाए और अज्ञान दूर हो जाए, तो अज्ञानजन्य जो चार गति का दुःख (है, वो) मिट जाये, और अल्पकाल में मुक्ति हो जाये। असंख्य समय लगता है, अनंत समय लगता नहीं है। अनुभव के काल के बाद अनंत समय नहीं लगता है। असंख्य समय में मुक्ति हो जाती है। आहाहा!

और एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप अभी प्रमाण में से नय निकालने की बात आचार्य भगवान, प्रमाण सिद्ध किया, प्रमाणज्ञान सिद्ध किया। प्रमाणज्ञान का विषय नौ तत्त्व है। यानि नौ तत्त्व परिणमित जीव है, परिणामी जीव है। परिणामी जीव प्रमाण का विषय है। अपरिणामी जीव, शुद्धनय का विषय है। परिणामी द्रव्य में से अपरिणामी निकालो। आहाहा! परिणामी द्रव्य पर्याय सापेक्ष द्रव्य,

पर्याय सहित द्रव्य, परिणमता भी है, परिणमता है। तो एक उसमें से आचार्य भगवान प्रमाणज्ञान में लाकर, प्रमाणज्ञान में लाकर, यानि पर से भिन्न पड़ गया। प्रमाणज्ञान पर से भिन्न पाड़ता है और शुद्धनय पर्याय से भिन्न पाड़कर अनुभूति करा देता है। प्रमाणज्ञान, पर से भिन्न पाड़कर अपना द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में लाता है और शुद्धनय प्रमत्त-अप्रमत्त से रहित बताकर शुद्धात्मा का दर्शन कराता है। आहाहा! ये बात अभी आचार्य भगवान फ़रमाते हैं। प्रमाण स्थापित किया, प्रमाण की स्थापना (की)। मौसंबी लेना, पत्थर नहीं लेना। मौसंबी चाहिए, जिसमें रस है। ऐसे नौ तत्त्व , ये मौसंबी के स्थान पर हैं। मगर चैतन्य रस उसमें से जुदा निकालना।

और एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर, पुद्गल के समीप जाकर देखता था, तो आत्मा का दर्शन नहीं होता था। राग के लक्ष्य से आत्मा का दर्शन नहीं होता था। शास्त्र ज्ञान के लक्ष्य करने से आत्मज्ञान नहीं होता था। अभी उसका लक्ष्य छोड़ दे और **एक जीवद्रव्यके,** उसमें नौ था, उसमें नौ था। नौ व्यवहारनय का विषय है। एक है, ये निश्चयनय का विषय है। **एक जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर**, आहाहा! यानि नौ तत्त्व का मैं कर्ता हूँ, वो बुद्धि छोड़ दे और नौ तत्त्व ज्ञान का ज्ञेय है, वो बुद्धि भी छोड़ दे। उसका लक्ष्य सर्वथा छोड़ दे। नौ तत्त्व छोड़ना नहीं है, नौ तत्त्व का लक्ष्य छूट जाता है। जब आत्मा, आत्मा के लक्ष्य पर आता है, अंदर में जाता है उपयोग, जो बहिर्मुख उपयोग था, वो उपयोग जात्यान्तर होता है। एक अतीन्द्रियज्ञान नया प्रगट होता है। तो ऐसे स्वभाव के समीप जाकर, **अनुभव करनेपर,** ये नौ तत्त्व अभूतार्थ, असत्यार्थ हैं। अभेद में भेद दिखता नहीं है। भेद, भेद में होने पर भी, नौ तत्त्व के भेद, भेद में होने पर भी, भेद को भेद का स्थान में रखो, अभेद में नहीं मिलाओ। अभेद में मिलाता है, उसको आत्मदर्शन होता नहीं है।

मुमुक्षु:- सही है!

उत्तर:- सही है? अच्छा!

ऐसा है, जब ये ज्ञान-गोष्ठी का आयोजन होता है, तो इसमें कुछ जीवों का हित होनेवाला होगा, तो ही ये बनाव बनता है। नहीं तो बनाव बनता नहीं है। किसी को थोड़ा समझ में आवे, ज़्यादा समझ में आवे, कोई अभिमुख हो जावे, सम्यक्त्व सन्मुख हो जाता है और किसी को सम्यग्दर्शन भी (हो जाता है)। पंडाल में हो सकता है, मंदिर में जाने की ज़रूरत नहीं है। ये मंदिर है, भगवान अंदर विराजमान है, देह-देवल में भगवान आत्मा विराजमान है। लक्ष्य फेर दे, लक्ष्य फेर दे। ऐसा-ऐसा करता है, छोड़ दे। ऐसा कर। बस! इतनी देर है। देर तो इतनी है।

परिणाम परद्रव्य है, नौ तत्त्व परद्रव्य है। परद्रव्य का लक्ष्य छोड़ दे। परद्रव्य को छोड़ने की बात नहीं है। आहाहा! पदार्थ के त्याग की बात नहीं है। उसका लक्ष्य वहाँ से हटा दे। जानना तो आता है तेरे को, वो ज्ञेय बदल दे, ध्येय बदल दे। ध्येय बदल दे, ज्ञेय बदल दे। आहाहा! इतनी देर है। तो आचार्य भगवान फ़रमाते हैं कि **जीवद्रव्यके स्वभावके समीप जाकर अनुभव करनेपर**, आहाहा! **करनेपर**, वो नौ तत्त्व अभूतार्थ और असत्यार्थ हैं। आहाहा! तो जो नौ तत्त्व असत्यार्थ, अभूतार्थ हैं, उसका मर्म समझे नहीं और नौ तत्त्व को उड़ाता है। अज्ञानी जीव व्यवहार के पक्षवाला, ऐसे, आहाहा! आक्षेप करता है ज्ञानी पर। उसको समझ में आता नहीं है। अभूतार्थ का अर्थ (ये है कि) मेरे अभेद

स्वभाव में भेद नहीं है। रस में छिलका नहीं है, रस में छिलका नहीं है। छिलका अभूतार्थ है? हाँ! अभूतार्थ है। पर है, है मगर इसमें नहीं है। रस में नहीं है। ऐसे चैतन्य चमत्कार भगवान आत्मा में रागादि परिणाम नहीं है। आहाहा! अभूतार्थ का अर्थ है स्वभाव में त्रिकाल अभाव है, स्वभाव में नौ तत्त्व का त्रिकाल अभाव है। मोक्ष की पर्याय भी इस मुक्त स्वभाव में नहीं है। मुक्त स्वभाव में तो ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख है, जिसका लक्षण परमपारिणामिक भाव है। वो क्षायिक लक्षणवाली पर्याय आत्मा में नहीं है, तो उदय लक्षणवाली पर्याय तो आत्मा में (कैसे होगी)? मत देख। मेरे आत्मा में राग है, मत देख।

एक दफ़े भगवान आत्मा को स्वभाव के समीप जाकर देख, तो आत्मा का दर्शन होगा। उस टाइम राग मेरे में है, नहीं दिखेगा। अरे! सम्यग्दर्शन मेरे में है, ऐसा नहीं दिखेगा। कश्मीरीलाल जी! आहाहा! अनंत गुण का पिण्ड भगवान सामान्य....सामान्य का दर्शन होता है, तब विशेष। आहाहा! विशेष का अज्ञात हो जा!

ऐसे इष्टोपदेश में एक ४४वीं गाथा है, पूज्यपाद आचार्य ने लिखी है। उसमें अनुभव की विधि बताकर फ़रमाते हैं कि जो जीव विशेष का अज्ञात होता है। समझे? यानि विशेष जो पर्याय, ज्ञान का ज्ञेय नहीं बनती है, अकेला सामान्य ज्ञान का ज्ञेय बनता है, तब अनुभव होता है। तो निर्विकल्पध्यान होता है, (तो) वो (जीव) बंधता नहीं है और छूटता है, ऐसा श्लोक है। निर्विकल्पध्यान आता है, तो बंधता नहीं है और छूटता है। तो निर्विकल्पध्यान कब आवे? कि विशेष का अज्ञात हो तब। यानि पर्याय का लक्ष्य छूटे, तब। जैसे ११४वीं गाथा में आया कि पर्याय को जानना सर्वथा बंद कर दे। साहब! कथंचित् बंद करूँ तो क्या? आहाहा! यानि कथंचित् जानूँ तो क्या? स्याद्वाद है।

अरे! अनुभव के बाद स्याद्वाद का जन्म होता है। अनुभव कैसे होवे, वो बात अलग है और अनुभव के बाद क्या है, वो बात अलग है। आहाहा! अनुभव तो हुआ नहीं और ज्ञानी की नकल करता है। चाणा क्या करता है? नकल करता है। वो भी व्यवहारनय को जानता है। १२वीं गाथा में चोखा स्पष्ट लिखा है। आहाहा! स्पष्ट लिखा है कि व्यवहारनय जाना हुआ प्रयोजनवान है। तो मैं तो पर्याय को जानता हूँ, उसमें क्या तकलीफ़? ज्ञानी भी जाने और मैं भी जानूँ। जहाँ तक तू वो पर्याय को जानता है, तहाँ तक मिथ्यादृष्टि है। (पर्याय का) कर्ता है (ऐसा मानता है), तहाँ तक तो मिथ्यादृष्टि है ही।

धन्नालाल जी साहब! आहाहा! ये ज्ञान-गोष्ठी है ना। आहाहा! अज्ञान-गोष्ठी नहीं है। पर्याय का मैं कर्ता हूँ, तो अज्ञान-गोष्ठी है और पर्याय को मैं जानता हूँ, वो भी अज्ञान-गोष्ठी है। छोड़ दे, लक्ष्य छोड़ दे। थोड़ी देर के लिए तो छोड़ दे, बाद में आत्मा का अनुभव करने के बाद, वो जो पर्याय ज्ञान का ज्ञेय होती है, वो हेयरूप ज्ञेय होगा। अभी तेरे को उपादेयरूप ज्ञेय बनता है। आहाहा!

अभी तू पर्याय को जानने की बात करता है ना, तो वो उपादेयरूप ज्ञेय हो गया। आहाहा! और अनुभव के बाद पर्याय को ज्ञानी जानता है, वो ज्ञेय, हेयरूप ज्ञेय है। उपादेयरूप ज्ञेय नहीं है, उसका। उपादेयरूप ज्ञेय तो एक परमात्मा आ गया दृष्टि में, तो आ गया बस। आहाहा!

पर्याय जानने में आती है। पर्याय जानने पर पर्यायदृष्टि नहीं होती है, अनुभव के बाद। अनुभव के पहले पर्याय को जानने से पर्यायदृष्टि (होती है)। अनुभव के बाद, पर्याय को जानने से पर्यायदृष्टि

होती नहीं है। उसको जानना व्यवहार है। वो भी काम चलाऊ थोड़ी देर के लिए, निर्विकल्पध्यान में टिक नहीं सकता है मेरा उपयोग (इसलिए)। आहाहा! तो ज्ञान का ज्ञेय हो जाता है। मगर ज्ञान का ज्ञेय ये ही है, तो फिर से निर्विकल्पध्यान आता नहीं है और जो वजन आ जाता है, तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

बाबूजी:- जानने में आ जाये तो जानना नहीं है।

उत्तर:- हाँ! जानना नहीं है। जानने में आता है। ठीक है! मगर ये मेरा जानने का विषय है, ऐसा ज्ञानी मानता नहीं है। जिसके लक्ष्य से आनंद की वृद्धि न हो, वो जानने का विषय नहीं है। जिसके लक्ष्य से आनंद की प्राप्ति तो हुई, मगर जिसको बार-बार जानने से आनंद की वृद्धि होती है, वो ही, एक ही ज्ञेय है, दूसरा ज्ञेय है नहीं। ऐसी बात है। आहाहा!

मुमुक्षु:- आनंद का समुंदर उछलता है।

उत्तर:- भिंड भाग्यशाली है। आहाहा! स्वयं उछलंती। आहाहा! जीवद्रव्य के स्वभाव के समीप जाकर देख, पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। आहाहा! मैं पर्याय का कर्ता हूँ, वो लक्ष्य छोड़ दे और पर्याय ज्ञान का ज्ञेय है, वो लक्ष्य छोड़ दे। क्योंकि भेद के लक्ष्य से अभेद की अनुभूति होती नहीं है। भेद के लक्ष्य से रागी प्राणी को अवश्य राग होता है। राग को छुड़ाने के लिये भेद का लक्ष्य छुड़ाना है। आहाहा! राग की उत्पत्ति का जब व्यय होता है, तब वीतरागभाव प्रगट हो जाता है। तो पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे और स्वभाव के समीप आकर देख। **स्वभावके समीप जाकर,** क्या कहा? प्रभु! तू सुन तो सही तेरी प्रभुता कैसी है। आहाहा! प्रभु! तू सुन! सर्वज्ञ भगवान सबको विभु, प्रभु, भगवान कहकर बुलाते हैं। कोई पामर नहीं है, कोई मनुष्य नहीं है, कोई स्त्री पुरुष नहीं है। किसी को कर्म का बंध हुआ ही नहीं और कर्म का उदय किसी को आता ही नहीं और कर्म का लक्ष्य कोई करता ही नहीं है और उसकी दशा में मिथ्यात्व होता ही नहीं है, ऐसा ज्ञायकतत्त्व मैं हूँ। मैं तो परमात्मा हूँ। परमात्मा का ध्यान कर तो परमात्मा बन जायेगा। आहाहा!

स्वभावके समीप जाकर अनुभव करनेपर वे अभूतार्थ हैं, असत्यार्थ हैं; जो पहले भूतार्थ कहा, उसको अभूतार्थ कहा। आहाहा! पहले एकत्वबुद्धि थी, तो ऐसे अज्ञान की परिस्थिति बनती थी। अभी जो स्वभाव के समीप जाकर देखा, तो अज्ञान टल गया, तो उसमें, नौ तत्त्व में आत्मबुद्धि छूट जाती है। आत्मबुद्धि रहती नहीं है। आत्मा में आत्मबुद्धि आ गई और नौ तत्त्व ज्ञान का ज्ञेय बनता है, कर्ता का कर्म बनता नहीं है, क्योंकि अकर्ता को कर्म नहीं हो और ज्ञाता को (भी) कर्म नहीं होता है। ज्ञाता का ज्ञेय होता है, नौ तत्त्व । आहाहा!

(वे जीव के एकाकार स्वरूपमें नहीं है;) कोष्ठक किया। जीव का जो अभेद सामान्य स्वभाव है, उसमें नौ तत्त्व का भेद नहीं है। अनेक का एक में.... अनेक नहीं है, एक में अनेक नहीं है। एक ज्ञायकभाव हूँ, मैं तो। अप्रमत्त दशा भी मेरे में नहीं है। अरे! शुद्धोपयोग की दशा (भी) मेरे में नहीं है? नहीं है। तेरे में, शुद्धोपयोग तेरे में नहीं है। क्या बात है? निश्चय रत्नत्रय का परिणाम मेरे में नहीं है। व्यवहार रत्नत्रय के परिणाम की बात तो दूर रहो, वो तो जाति-भेद है। जिसकी जाति एक है, वो परिणाम मेरे में नहीं है। आहाहा! द्रष्टि का विषय द्रष्टि में आये बिना विकल्प टूटेगा नहीं, निर्विकल्पध्यान आयेगा नहीं। निर्विकल्पध्यान के बिना सम्यग्दर्शन का जन्म होता नहीं। आहाहा!

(वे जीव के एकाकार स्वरूपमें नहीं हैं;) भले हों! नौ तत्त्व , नौ तत्त्व में भले हों, मगर मेरे में नहीं हैं। आहाहा! मौसंबी का रस में छिलका नहीं है। छिलका-छिलका में (भले) हो। छिलका और रस एकक्षेत्रीय होने पर भी जुदा-जुदा रहता है। एकक्षेत्रीय रहने पर भी जुदा-जुदा रहता है। ऐसे आकाश के एक क्षेत्र में, आत्मा के एक क्षेत्र में नहीं, आकाश के एक क्षेत्र में नौ तत्त्व भी हैं और जीवतत्त्व भी है, मगर जुदा-जुदा रहता है क्योंकि आकाश के क्षेत्र में तो सब रहते हैं। मगर मेरे क्षेत्र में नौ तत्त्व (नहीं हैं), आकाश के क्षेत्र में हैं, मैं भी हूँ और नौ तत्त्व भी हैं। मगर मेरे क्षेत्र में वो नौ तत्त्व नहीं हैं। स्व-क्षेत्र में पर-क्षेत्र की नास्ति है। आहाहा!

(जीव के एकाकर स्वरूपमें नहीं है;) हमको दिखाई ही नहीं दिया। अभेद की दृष्टि की, तो भेद दिखाई नहीं देता है। ऐसा एक ३७ नम्बर का श्लोक है। आधार से श्रद्धा दृढ़वान होती है। दृढ़ती है, दृढ़ता आती है, शास्त्र के आधार से। ३७ नम्बर का श्लोक है, ३७। ये आ गया।

जो वर्णादिक अथवा रागमोहादिक भाव कहे वे सब ही इस पुरुष (आत्मा)से भिन्न हैं, भिन्न होता है, ऐसा नहीं लिखा। एक-एक शब्द की कीमत है।

बाबूजीः- सदा ही भिन्न हैं।

उत्तरः- सदा ही भिन्न हैं। आहाहा! वो मानता है सदा ही अभिन्न हैं। दुःख मेरे से अभिन्न मानता है। है भिन्न, मानता है अभिन्न, इसका नाम अज्ञान है। आहाहा!

बाबूजीः- जो अभिन्न हो, तो फिर भिन्न कैसे करें?

उत्तरः- हाँ! जो अभिन्न हो गया, तो दुःख का नाश होवे नहीं, कोई सिद्ध पर्याय (ही) प्रगट न हो। **इस पुरुष (आत्मा) से भिन्न हैं, इसलिए अंतर्दृष्टिसे देखनेवालेको**, बहिर्दृष्टि नहीं, बहिर्दृष्टि से आत्मा का दर्शन नहीं होता है। आहाहा! नौ तत्त्व दिखाई देगा, बहिर्दृष्टि से तो। नौ तत्त्व आत्मारूप दिखाई देगा। नौ तत्त्व नौ तत्त्व रूप से नहीं दिखने में आयेगा, बहिर्दृष्टि से। मगर **अन्तर्दृष्टिसे देखनेवालेको यह सब दिखाई नहीं देते हैं,** आहाहा! तो स्वपरप्रकाशक का नाश होगा। क्या कहा? आत्मा भी दिखाई देवे और ये वर्णादि-रागादि भाव भी दिखाई देवें, तो स्वपरप्रकाशक की सिद्धि होती है? स्वपरप्रकाशक प्रमाण में आत्मा का अनुभव नहीं होता है। केवल स्वप्रकाशक के द्वारा ही आत्मा का अनुभव होता है। अभेद में भेद दिखता नहीं है। पर्याय की चक्षु सर्वथा बन्द हो जाती है और द्रव्यार्थिकचक्षु खुलकर आत्मा का दर्शन होता है और स्वप्रकाशकपूर्वक स्वपरप्रकाशक है, तो व्यवहार है। स्वप्रकाशक को छोड़ता है तो, वो स्वपरप्रकाशक अज्ञान में जाता है। ऐसा अज्ञानी जीव निगोद में भी स्वपरप्रकाशक है, वो प्रमाणज्ञान है। आहाहा!

प्रमाणज्ञान की दो व्याख्या हैं। एक द्रव्य का प्रमाण और एक ज्ञान की पर्याय का प्रमाण। विषय आया है, अच्छा। सुनना बराबर। ये पहले श्लोक पूरा कर दूँ। **देखनेवालेको यह सब दिखाई नहीं देते**, **मात्र एक** मात्र, सिर्फ ONLY एक **सर्वोपरि तत्त्व ही दिखाई देता है**। आहाहा! सर्वोपरि है! आहाहा! भगवान आत्मा सर्वोपरि है। नौ तत्त्व में सर्वोपरि तत्त्व परमार्थ भगवान आत्मा है। **सर्वोपरि तत्त्व ही दिखाई देता है। तत्त्व ही, सर्वोपरि तत्त्व ही**, आहाहा! सम्यक्एकांत कर दिया। आहाहा!

मुमुक्षुः- सर्वोपरि तो मोक्ष होता है ना साहब?

उत्तरः- नहीं! सर्वोपरि मोक्ष नहीं होता है। मोक्ष तो एक समय की पर्याय नाशवान है और जीव का लक्षण इसमें नहीं है। जो जीवतत्त्व का लक्षण, परमपारिणामिक भाव है, वो उसमें नहीं है। मोक्ष पर्याय कर्म के अभाव की अपेक्षा रखती है, इसलिए सापेक्ष है और भगवान आत्मा तो निरपेक्ष है। आहाहा! इसलिए मोक्ष के साथ मिलान करो तो भी, मोक्ष की पर्याय के केवलज्ञान के साथ मिलान करो तो भी, भगवानआत्मा तो अनादि-अनंत सर्वोपरि रहता है। आहाहा! केवलज्ञान के काल में भी केवलज्ञान सर्वोपरि नहीं होता है। केवली उसको सर्वोपरि नहीं जानते हैं, । केवली अपनी आत्मा को सर्वोपरीसर्वोपरि जानते हैं, तो केवलज्ञान टिकता है और रहता है सादि अनंतकाल।

बाबूजीः- मोक्ष जिसके सहारे रहता है, वो सर्वोपरि है।

उत्तरः- हाँ! मोक्ष जिसके सहारे होता है, वो सर्वोपरि तत्त्व है। आहाहा!

मुमुक्षुः- प्रमाण के दो प्रकार सिद्ध कर रहे थे आप। प्रमाण के दो प्रकार।

उत्तरः- अभी ये। वो आता है। ये श्लोक पूरा हो जाये ना फिर वो आता है।

मात्र एक सर्वोपरि तत्त्व ही दिखाई देता है-केवल एक, केवल, ONLY मात्र, फ़क्त, एक **चैतन्यभावस्वरूप अभेदरूप आत्मा ही दिखाई देता है**। परिणाम में अभेद आत्मा दिखाई देता है, तो परिणाम भी कथंचित् अभेद होकर आत्मा बन जाता है। आहाहा!

अभी प्रमाण का दो विषय क्या? ५-७ मिनिट बाकी हैं। ७ मिनिट बाकी है। हो जाएगा।...

अच्छा! प्रमाण का, ये MOST IMPORTANT बात है। जो विद्वान के लिए तो बहुत अच्छी बात है। समझे? सबके लिए अच्छी है वैसे तो कि प्रमाण के दो भाव हैं - एक द्रव्य का प्रमाण और एक ज्ञान की पर्याय का प्रमाण। द्रव्य के प्रमाण में क्या आता है? कि द्रव्य-पर्याय वस्तु, वो प्रमाणज्ञान का विषय है। द्रव्य भी आत्मा और पर्याय भी आत्मा। आहाहा! जो आत्मा द्रव्य का है, वो ही आत्मा पर्याय का है। द्रव्य-पर्याय वस्तु सारी, ये प्रमाणज्ञान का विषय है। समझे? एक बात। और ज्ञान की पर्याय का प्रमाण कि, उसमें स्व भी दिखे और पर दिखे, स्वपरप्रकाशक। स्व भी जानने में आवे और पर भी जानने में आवे। ज्ञान की पर्याय का प्रमाण। ज्ञान की पर्याय का प्रमाण यानि प्रमाणज्ञान, यानि प्रमाणज्ञान। ज्ञान की पर्याय युगपद् दो को जाने, द्रव्य-पर्याय, द्रव्य-पर्याय दो को जाने ना, तो उसका नाम प्रमाणज्ञान है। और जो द्रव्य का प्रमाण है और द्रव्य-पर्याय सारी वस्तु को जाने, उसका नाम प्रमाणज्ञान, ये द्रव्य का प्रमाण।

अभी द्रव्य का प्रमाण में से द्रव्यदृष्टि करना हो तो, पर्याय का निषेध कर कि पर्याय मेरे में नहीं है, तो अन्तर्दृष्टि हो जायेगी। तो आत्मा का अनुभव उसमें होता है। द्रव्य के प्रमाण में से निश्चय निकालना कि मैं सामान्य हूँ और विशेष नहीं हूँ। प्रमाणज्ञान में विधि-निषेध नहीं है। द्रव्य भी है और पर्याय भी है। नित्य भी हूँ और अनित्य भी हूँ। उसमें 'भी' आता है। प्रमाण में 'भी' आता है। नय में 'ही' आता है। नय में ('ही' आता है)। आहाहा! कि मैं सामान्य ही हूँ और विशेष नहीं हूँ। उसमें विधि-निषेध, नय में आती है और बाद में विधि-निषेध का विकल्प भी छूट जाता है।

आज प्रकरण आया था १४४ गाथा पर। आहाहा! कि मैं सामान्य हूँ, ऐसा ही विकल्प (और) सामान्य में विशेष नहीं है, ऐसा निषेध का विकल्प, दो ही विकल्प हैं। ये दोनों (ही) विकल्प कर्ता-कर्म

की प्रवृत्ति, अज्ञान हैं। आहाहा! वो विकल्प छूटता है (तब) पक्षातिक्रांत होता है। तो जैसा है, ऐसा जानता है। तो प्रमाणज्ञान के विषय में, द्रव्य-पर्याय दो हैं। उसमें से द्रव्य उपादेय है और पर्याय हेय, ऐसा निकालना, उसका नाम निश्चयनय है। अभी एक बात बाकी रह गई, ज्ञान की पर्याय में स्व-पर दो जानने में आता है। समझ गए? तो दो जानने में आता है, उसमें अनुभव नहीं होता है। अभी जाननहार जानने में आता है, पर जानने में नहीं आता, वो उसमें से निश्चयनय निकाल। ज्ञान की पर्याय के प्रमाण में निश्चय-व्यवहार दो शामिल हैं। ज्ञान की पर्याय के प्रमाण में, निश्चय-व्यवहार में, दो शामिल हो गए हैं। आहाहा!

ज्ञान की (पर्याय के) प्रमाण में, दो शामिल हो गए, द्रव्य भी है और पर्याय भी जानने में आती है। अभी पर्याय का जानना बंद कर दे और द्रव्य सामान्य को जान ले, तो प्रमाण में से अकेला स्वप्रकाशक, निश्चयनय, शुद्धनय निकालता है, उसको अनुभव होता है। आहाहा! तो सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत भी हो जाता है। द्रव्य को जानते-जानते पर्याय भी जानने में आती है और द्रव्य के निश्चय में जो आया, वो मैं ये हूँ और आनंद की पर्याय प्रगट हो गई, वो भी मैं हूँ। तो सम्यक्एकांतपूर्वक अनेकांत, ध्येयपूर्वक ज्ञेय होता है।

सच्चे प्रमाण का जन्म, नयपूर्वक ही प्रमाण होता है। कई जीव ऐसा पकड़ते हैं कि प्रमाणपूर्वक ही नय है। मगर प्रमाणपूर्वक नय है, वो बात सही है। मगर किसको? जिसको अनुभव हो गया, सच्चा प्रमाण हो गया, वो प्रमाणपूर्वक नय की बात करे, तो सही है। तेरे को तो अनुभव हुआ नहीं और प्रमाण का ठेका लगा दिया कि प्रमाणपूर्वक नय है। कि (नहीं), नयपूर्वक प्रमाण का जन्म होता है। अज्ञानी को प्रमाणपूर्वक नय होता है कि नयपूर्वक प्रमाण होता है? कि नयपूर्वक ही प्रमाण होता है। बाद में, प्रमाणपूर्वक नय का प्रयोग करे, तो सम्यक् है। ऐसे अनुभव के पहले प्रमाण, प्रमाण, प्रमाण का पक्ष में आ जावे। प्रमाण जिसका लक्षण है, वो भी व्यवहार है क्योंकि वो पूज्य नहीं है। प्रमाण पूज्य नहीं है, प्रमाण में से शुद्धनय ही पूज्य है। निश्चयनय सच्ची है, तो पक्षातिक्रांत (हो जाता है)।

पहले निश्चयनय आती है। पक्षातिक्रांत के पूर्व, अनुभव के पहले, एक निश्चयनय प्रगट होती है। वो निश्चयनय बिल्कुल अपूर्व है। अनंतकाल से ऐसे सविकल्प निश्चयनय भी प्रगट नहीं हुई है। यथार्थ निर्णय होता है, उस टाइम, एक अपूर्व निश्चयनय प्रगट होता है। है सविकल्प, है (वो जीव) मिथ्यादृष्टि। भले मिथ्यादृष्टि है, तो भी मिथ्यात्व अभी जाने वाला है, ऐसा मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ये कोई ऐसा निर्णय आता है।

१४४वीं गाथा में आएगा, प्रथम निर्णय कर, बाद में अनुभव होता है। ऐसा आएगा सब, गाथा में। तो पहले निर्णय कर। सुना बहुत, पढ़ा बहुत, मगर निर्णय करनेवाला कोई विरला (ही) होता है। निर्णय कर ले अभी। मगर निर्णय को आगे नहीं करना। जो निर्णय को आगे करता है, उसको निर्णय ही नहीं है। ऐसा, जैसा आत्मा प्रत्यक्ष अनुभव में आता है, ऐसा परोक्ष अनुभूति में, सविकल्पदशा में, मानसिक ज्ञान में, ऐसा ही आत्मा ख्याल में आ जाता है और अनुभव के बाद मिलान करता है, तो मिल जाता है कि, अरे! वो बात आत्मा की तो मुझे पहले ही आ गई। ऐसा ही अनुभव हुआ। आहाहा! फ़र्क इतना है कि इसमें आनंद आता है, उसमें आनंद नहीं था। उसमें अपूर्व हर्ष था, ऊपर अपूर्व हर्ष था, प्रसन्नता।

क्या? वो प्रसन्नता थी, तो भी अतीन्द्रिय आनंद नहीं था। मगर उसको मालूम हो जाता है, अपूर्व निर्णयवाले को। किसी को तो अंतर्मुहूर्त में अनुभव होता है और ज़्यादा से ज़्यादा छह महीने में अनुभव होता ही है, ऐसा कोलकरार (वादा) हो जाता है। वो आत्मा जानता है, वो आत्मा जानता है। जिसको अपूर्व निर्णय आया, बाद में अनुभव होता है, वो, वो ही आत्मा जानता है।

इसके बारे में एक प्रश्न उठा कि ऐसे अपूर्व निर्णय आता है, तो कोई आप उसका विवेचन करो कि क्या है? तो पंचाध्यायीकर्ता ने कहा कि वो अपूर्व निर्णय होने की बात वचन-अगोचर है। आहाहा! वो निर्विकल्पवत् है। निर्विकल्प नहीं, निर्विकल्पवत् है। केवल अनुभवगम्य है। वो वचन से कहा नहीं जाता है। सम्यग्दर्शन तो कहा जाता है मगर सम्यग्दर्शन....